# हिंदी साहित्य में पावस

*डॉ. रविन्द्रनाथ मिश्र*

साहित्य और पावस का मानवजीवन से अभिन्न रिश्ता है । दोनों में लोकमंगल एवं आनंद की भावना निहित है । साहित्य जहाँ मानव का मानव के साथ, अतीत का वर्तमान के साथ, बाध्य का अंतर के साथ के संबंधों द्वारा मानवीय मूल्यों की स्थापना कर हमारे, जीवन को सुखमय, आचरणयुक्त एवं शांत बनाता है, वहीं पावस भी मानव के अंतः, एवं बाह्य जीवन को खुशाहाली प्रदान करता है । पावस हमारी श्रृंगारिक भावनाओं को भी उद्वीप्त करता है । जिसका गुणगान अतीत के साहित्य में व्यापक रूप से हुआ है । मानव जीवन की सार्थकता पानी के बिना व्यर्थ है । महाकवि निराला ने तो इसीलिए बादल को वर्ष के हर्ष के रूप में पुकारा है ।

युगों-युगों से प्रकृति मानव की सहचरी रही है। जीवन की उत्पत्ति का मूल स्रोत और उसके पोषक का कार्य प्रकृति ही करती रही है । इन्हीं दिनों के अभिव्यक्ति का नाम ही तो साहित्य है । रचनाकार को सर्जन की ऊर्जा जीवन और जगत से ही प्राप्त होती है । अतीत का साहित्य तो प्रकृति और जीवन के नाना क्रियाकलापों से भरा है, लेकिन आज का वर्तमान युग भौतिकता के बदले प्रभाव के कारण प्रकृति से दूर होता दिखाई दे रहा है । आज के साहित्य में ऋतुओं के वर्णन एवं उसकी महत्ता का अंकन उस रूप में नहीं हो रहा है जिस रूप में कि पहले होता था ।

संस्कृत साहित्य में कालिदास ने मेघदूत, ऋतुसंहार, कुमारसम्भव एवं अभिज्ञाव शाकुंतलम आदि कृतियों में प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है। जिसमें वर्षाऋतु का अद्भुत वर्णन मिलता है । हिंदी साहित्य के आदिकाल की मुख्य प्रवृत्ति वीर और श्रृंगार के भावों को व्यक्त करने की रही है । जिसमें प्रेम के भावों की सफल अभिव्यक्ति पावस के माध्यम से हुई है । भक्तिकाल के प्रारंभ में प्रेम के पीर के कवि जायसी ने तो बारहमासा के द्वारा प्रकृति के नाना क्रिया कलापों के साथ-साथ विरही नागम के मनोभावों का बड़ा बेजोड़ एवं गम्भीर चित्रण किया है ।

भा भादों दूसभर अति भादी । कैसे भरौं रैनि अधियारी ॥

मंदिर सून पिड अनतै बसा । सेज नागिनी फिरि -फिरि डला ॥

रहौं अकेलि गई एक पाटी । नैन पसारि भरौं हिय फाटी चमकि बीजु घन गरर्जि तारासा । बिरह काल हाई जीड गरास बरसै मघा झकोरि झकोरी । मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी महाकवि सूरदास के राधा-कृष्ण की लीलाभूमि वनस्थली ही रही है । शैशवकाल से ही कृष्ण बाल-गोपालों के साथ कालिंदी के कूल पर- शोभित लता-कुंजों के बीच खेलते रहे हैं । राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का प्रारंभ भी प्रकृति के प्रांगण से ही शुरु हुआ । उनके अंदर प्रेम के भावों का अंकुर वर्षा ऋतु के प्रारंभ में ही हुआ ।

गगन गरजि घहराय जुरी घटा कारी ।
पवन झकझोर, चपला चमक चहुँ ओर,
सुवन तन चितै नंद डरत भादी ।

कहयौ वृषभानु की कुंवरि सौं बोलिकै,

राधिका कान्ह घर लिए जादी ।

दोऊ घर जाहु संग नभ भयौ,

स्याम रंग कुंवर कर गह्यो वृषभानु बारी ।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने साहित्य में प्रकृति का भरपूर चित्रण किया है । इतर कवियों ने जहाँ पावस ऋतु का वर्णन मूलतः नायक-नायिका के प्रेम के भावों के संदर्भ में किया है वहाँ तुलसी ने पावस के नाना प्रकारों के परिवर्तित स्वरूप की तुलनात्मक चर्चा मानवीय नैतिक मूल्यों से की है । तुलसी की ये पंक्तियाँ लोकजीवन में सामान्यतः प्रचलित हैं जिन्हें कि उपयुक्त प्रसंगों के संदर्भ में उद्धृत किया जाता है।

बरबहि जलद भूमि निअराएँ । जथा नवहिं बुध-विद्या पाएँ ।

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे । खल के बचन संत सह जैसे ॥

समिटि समिटि भरहिं तलावा । जिमि सद्गुन सज्जन पहि आवा ।

सरिता जल जलनिधि भहु जाई । होइ अचल जिमि जिवहरि पाई ।

पावस ऋतु में बादलों की आवाज से विभोगी राम का मन सीता के अभाव में डरने लगता है । विभोग श्रृंगार की सफल अभिव्यक्ति पावस के माध्यम से साहित्य में की गई है । जिसकी अपनी एक लंबी परंपरा है । रीतिकालीन कवियों का मुख्य विषय श्रृंगार ही रहा है । श्रृंगार वर्णन आदि अनेक रीतिकालीन परम्पराओं एवं रूढियों का पालन हुआ है। केशव, बिहारी, मतिराम, देव और घनानंद आदि कवियों ने श्रृंगारी भावों की अभिव्यक्ति पावस ऋतु के माध्यम से की है । घनानंद की नायिका जहाँ पावस के लिए व्याकुल होकर कहती है -

बिन पावस तौं इन व्यावास हो, नसु क्यों करि ये अब सो परसैं,

बदरा बरसौ दितु मैं घिरिकै नितही, अँखिया उधरी बरसै ।

वहीं पर देव की नामिका स्वप्न ही वर्षा ऋतु का आनंद लेती है ।

झहरि-झहरि झीनी बूँद है परति मानौ,

घहरि घटा घिरी है गगन में ।

आनि कहयो स्याम मो, सों, चलो झूलिबे को आजु,

फूली न समानी भयी ऐसी हौं मगन में ।

* * *

आँखि खोलि देखौं तो मैं, घन हैं न घनस्याम,

बेई छायी बूँदें मेरे आँसू हैं दृगन में ।

भारतेंदु युगीन साहित्य कला और श्रृंगार की अपेक्षा समाज, राष्ट्र और भाषागत आन्दोलन को केंद्र में रखकर लिखा गया । लेकिन परंपरागत काव्य मूल्यों की उपेक्षा नहीं की गई । आधुनिक - काल के प्रारंभ के कवि गुलाब सिंह कविराव का पावस वर्णन -

छैहै बंकमण्डली उमड़ि नभ मंडल में,

जुगनू चमक ब्रज नारिन जरै हैं री ।

दादुर मयूर झोने झींगुर मचै हैं सोर,

दौरि-दौरि दामिनी पिसान दुख देहैं री ।

भारतेंदु मण्डल के कवियों ने जगह-जगह पर पावस ऋतु का सुंदर चित्रण किया है । इस युग की परंपरा को द्विवेदी युगीन रचनाकारों ने आगे बढ़ाया । अतीतकालीन राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक गरिमा गान ही

युग की खास प्रवृत्ति रही है । राम और कृष्ण को मानवश्रेष्ठ मानकर गुप्त और हरिऔद ने महाकाव्य लिखे । जिनके चरित्र का गुणगान पावस के माध्यम से भी किया गया । 'प्रियप्रवास' के द्वादश सर्ग में सावन महीने का चित्रण इस प्रकार है -

सरस सुंदर सावन मास था
घन रहे नभ में घिर-घूमते ।
विलसती वसुधा जिनमें रही ।
छविवती उड़ती वकमालिका ।

'साकेत' के नवम सर्ग में विरहिणी उर्मिला को पावस ऋतु में आने वाले खंजन पक्षियों में प्रियतम की सुधि आती है -

निरख सखी ये खंजन आए,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर म भाए ?

छायावादी दौर में तो प्रकृति काव्य की मुख्य प्रवृत्ति रही है । जिसके अन्तर्गत श्रृंगारिक एवं अन्य भावों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है । द्विवेदी युगीन सामाजिक मर्यादा के बंधन के कारण प्रेम के भावों को प्रकृति के माध्यम से विविध रूपों में चित्रित किया गया है । 'आँसू' काव्य में प्रसाद मन के भावों को पावस के माध्यम से व्यक्त करते हैं -

झञ्झा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरदमाला,
पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला।
घिर जाती प्रलय घटायें, कुटिया पर आकर मेरी
तम चूर्ण बरस जाता था, छा जाती अधिक अंधेरी।
बिजली माला पहने फिर, मुसक्याता था आंगन में,
हाँ कौन बरस जाता था, रस बूँद हमारे मन में ।

जैसा कि मैंने पहले ही संकेत किया है कि निराला बादल को वर्ष के हर्ष के रूप में याद करते हैं । पावस हमारी आशाओं और आकांक्षाओं का प्रतीक है । जीवन की खुशहाली का आधार है । इसीलिए तो निराला कहते हैं कि -

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर !
राग-अमर ! अम्बर में भर निज शेर ।
झर-झर-झर निर्झर-गिरि-सर में,
घर,मरु तरु-मर्मर, सागर में
सरित-तड़ित-गति-चकित पवन में,
मन में, विजन-गहन-कानन में,
आनन-आनन में ख घारे कठोर -
राग-अमर ! अम्बर में भर निज शेर !
अरे वर्ष के हर्ष !

हिंदी साहित्य में पंत और प्रकृति एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं । प्रारम्भिक तौर का इनका सम्पूर्ण साहित्य प्रकृति के नाना क्रिया कलापों से भरा है । पंत पावस की संज्ञा अपने जीवन से देते हैं -

मेरा पावस ऋतु जीवन
मान-सा उमड़ा अपार मन,
गहरे धुँधले, धुले सांवले,
मेघों से मेरे भरे नयन ।

जहाँ पंत अपने जीवन को पावस ऋतु के रूप में चित्रित करते हैं, वहीं पर महादेवी वर्मा अपनी वेदना को नीरभरी दुर की बदली के रूप में व्यक्त करती है।

मैं नीर भरी दुख की बदली !
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसो,
क्रन्दन में आहत विश्व हंसा,
नयनों में दीपक से जलते,

पलकों में निझंरिणी मचली !

वर्माजी की सारी जीवन पीड़ा उनके काव्य में पावस की बूँद की भाँति टपकी है । छायावादी दौर की रचनाओं में वैयक्तक अनुभूतियाँ सर्वोपरि हैं फिर भी व्यक्ति के साथ-साथ समष्टि का चिंतन भी प्रधान है । जिसकी व्यापक अभिव्यक्ति प्रगतिवादी युग में हुई है । नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल और शिवमंगल सिंह सुमन आदि जैसे प्रगतिवादी कवियों ने ग्रामीण जीवन के चित्रण में जगह-जगह पावस ऋतु का परिवर्तित रूप प्रस्तुत किया है । सुमन जी पावस ऋतु में पिया की राह में जोहती नामिका के मन के उद् गॅार को इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

ताल-तलैया भरे चहुँ ओर
झकोर हिलोर में डोलै हिया,
दूब की चादर फैली दिगंत लौं,
मोर को शोर मरोरै जिया ।
आ रही काजर-आंजे निशा,
पुतली में फिरी घटा सावनी री,
आज की सांझ सलोनी बड़ी मन भावनी री,
भीजि गई देहरी पै खड़ी
बौछार की मार न जाय सही,
पीपर पात की घात लगी,
कुछ बात उठै पै न जाय कही,
साज ही साज सिंगार को दीपक
आज पिया की है आवनी री,

प्रगतिवाद के बाद का साहित्य मानव मन की गहराइयों एवं रोजमर्रा के जीवन से जुड़ा । समसामायिक घटनाएँ साहित्य की विषयवस्तु बनी । भौतिकता की आंच ने साहित्य की कोमल भावनाओं को ठेस पहुँचाया । प्रकृति विज्ञान की प्रयोगशाला बनने लगी । जिसका निरंतर दोहन किया जा रहा है। अब पावस ऋतु में नाचते हुए नन्हें-मुन्हें बच्चे नहीं दिखाई देते । रिम-झिम वर्षा में खेत निराती हुई ग्रामीण महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले लोकगीतों की धुनि विलीन हो गई है । सन् 60 के बाद के हिंदी साहित्य में पावस ऋतु का चित्रण पहले की भाँति नहीं हुआ है । प्रकृति की मौलिकता से दूर होता हुआ मनुष्य संकीर्ण एवं स्वार्थी बन गया है । पानी जहाँ हमारे जीवन का पर्याय है वहीं पर हमारी मान-मर्यादा से भी जुड़ा है । आज हम जिस मनुष्य को केन्द्र में रखकर साहित्य का सर्जन कर रहे हैं । आखिरकार वह प्रकृति के द्वारा ही पालित एवं पोषित है ।

आवश्यकता इस बात की है कि साहित्य के माध्यम से हमें प्राकृतिक संपदा को बचाना होगा अन्यथा जब जीवन ही नहीं होगा तो साहित्य की क्या उपयोगिता होंगी ? धुँआधार पेड़ों के कटने से आज उतनी वर्षा नहीं हो रही है जितनी कि पहले होती थी। पावस मानव मन की जिन कोमल एवं श्रृंगारिक भावनाओं को उदीप्त करता था आज वह भी समय के साथ गायब होती जा रही है । साहित्य का उद्देश्य मानव जीवन को ही चित्रित करना नहीं है अपितु जीवनदायिनी शक्तियों पर विचार करना भी जरूरी है।